अध्याय–२

श्रमनीति

वर्तमान आर्थिक दृश्य मीमांसा

—भारतीय मजदूर संघ

प्रस्तावना

'Labour Policy' पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० २ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्र प्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय २

वर्तमान आर्थिक दृष्य मीमांसा

राष्ट्र को श्रमिक से अपेक्षायें

श्रमिक से राष्ट्र की अपेक्षायें अल्प और सरल प्रतीत होती हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) श्रमिक जन कठिन श्रम करें, आवश्यक कौशल और ईमानदारी से कार्य करें उत्तरदायित्व ग्रहण करें।

(२) उन्हें चाहिये कि उद्योग और राष्ट्र को समृद्ध बनायें।

(३) इस समृद्धि में अपना न्याययुक्त भाग प्राप्त करें और साथ में सम्पन्न बनें।

राष्ट्रीय माँग के प्रभाव

जो उपरोक्त माँगों को उठाते हैं और श्रमिकों से उनकी पूर्ति चाहते हैं, वे कुछ परिस्थितियों की परिकल्पना करते हैं। वे परिस्थितियाँ क्या हैं जिनके अंतर्गत उपरोक्त सूत्र की पूर्ति स्वाभाविक रूप में श्रमिकों से प्राप्त हो सकती हैं ? इस प्रकार का परीक्षण कदाचित ही कभी अपेक्षित गम्भीरता से किया जाता है। अभीष्ट प्रतिफलों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ हैं जिनकी तुष्टि होनी आवश्यक हैं :—

(अ) मनुष्य को अपने काम से लगाव रखना ही चाहिए :—

यह भाव सही काम के लिए सही व्यक्ति के चयन के सिद्धान्त अथवा

भावी उन्नतिशील दृष्टिको । वित्तीय उत्प्रेरको, पद-प्रतिष्ठा का संतोष या मानवीय सम्बन्धों की सहायता से किया जा सकता है। साथ ही श्रमिक के लिए अच्छी कार्य परिस्थितियाँ और कार्य स्थान के निकट आवास होना भी आवश्यक है।

(ब) उसमें प्रमाणिकता से कार्य करके उन्नति करने की योग्यता होनी चाहिए :—

इसमें अनेक विषय सम्मिलित हैं जैसे तर्क संगत अच्छी और औद्योगिक नियोजन जो आकस्मिक सेवानिवृत्ति और कार्य-बदल का निरसन करता है और भविष्य के लिए विश्वास उत्पन्न करता है। दृढ़ प्रमोशन-नीति, अपने स्वय के योगदान के प्रतिफल में न्याय संगत भाग और इनके सम्बन्ध में सेवायोजक की मूलभूत ईमानदारी चाहिए।

(स) उसमें काम पर अपने को विकसित करने की योग्यता होनी चाहिए–

इसका अर्थ है सेवाकालीन प्रशिक्षण योजना, सामान्य प्रयोगों को करने की सुविधा, व्यक्ति की उन्नति के प्रचुर आंकलन और सारे प्रयासो की मान्यता।

(द) एक व्यक्तिगत श्रमिक की प्रगति और समस्त श्रमिकों की प्रगति में कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए :–

इसके लिए कार्य–मूल्यांकन का समस्त विषय सामने आ जाता है जिसमें वैज्ञानिक भृत्ति–भेद, योग्यता–परिमापन, ट्रेड यूनियन अधिकार, श्रमिकों और व्यवस्थापकों की परिसीमन रेखा और उनके तत्सम्बन्धी जन्मसिद्ध अधिकार (यदि कोई हों तो), बोनस का सम्बोध, लाभ की भागीदारी, आय वितरण का सम्बोध, निर्णयकारी प्रक्रिया इत्यादि हैं।

श्रम कानून, सरकारी नीति और श्रम–न्यायपालिका के दृष्टिकोण की सिद्धता की परीक्षा इस बात से की जा सकती है कि वे कहाँ तक

उपरोक्त परिस्थितियों की संतुष्टि करने में समर्थ हैं। क्योंकि उच्चतर स्तर पर इन परिस्थितियों का स्वागत करने और प्रबल बनाने के प्रयत्न किये बिना राष्ट्रीय मांग का अनुमोदन समाप्त हो जाता है और राष्ट्रीय या जनहित के बहाने श्रमिकों के शोषण का एक प्रयास प्रतीत होने लगता है।

सरकार और राष्ट्र से ट्रेड यूनियन की अपेक्षायें

ट्रेड यूनियनें यह अनुभव करती हैं कि उपरोक्त परिस्थितियों की परितुष्टि सरकार के समान किसी एक पक्ष के द्वारा नहीं की जा सकती हैं। परन्तु ट्रेड यूनियनें यह भी अपेक्षा करती हैं कि सरकार इस सम्बन्ध में उनकी मित्र बने और इसमें यह बात भी सम्मिलित है कि जहाँ सरकार सेवायोजक हो उन प्रशासन और औद्योगिक क्षेत्रों में योग्य परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायें। ट्रेड यूनियनें यह भी अपेक्षा करती हैं कि जहाँ पूंजीपतियों, व्यवसायिक व्यवस्थापकों और नौकरशाही के निहित स्वार्थ हों उन्हें 'तुमसे–श्रेष्ठ' वृत्ति का प्रयोग इन परिस्थितियों के निर्माण में न करने दिया जाए। प्रमुख रूप से खातों की जाँच, आश्वासनों का क्रियान्वयन, समान स्वार्थों पर पूर्ण और स्पष्ट मन्त्रणा, जैसे प्रश्नों पर व्यवस्थापकों को श्रमिकों की शिकायत का आधार नहीं छोड़ना चाहिए। अपने द्वारा एक रचनात्मक वृत्ति अपनाने के लिये ट्रेड यूनियनें केवल यही चाहती हैं कि श्रमिकों और उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिये।

दुर्भाग्य से इनमें से कोई भी परिस्थिति की परितुष्टि आज नहीं हो रही है और प्रतिफल में हम अत्यधिक परस्पर दोषारोपण, भ्रमनिरूपण और एक दूसरे के द्वारा दोष–स्थानान्तरण पाते हैं।

यदि राष्ट्रीय श्रम आयोग अपने राष्ट्र निर्माणकारी कार्य में कुछ उपयोगी बात करना चाहता है तो उसे इस कठिन स्थिति का हल

ढूढ़ना चाहिये । जिन संदर्भों में इन समस्याओं का हल ढूढ़ना है वे हैं— ट्रेड यूनियन आन्दोलन की स्थिति, अर्थ व्यवस्था की वर्तमान स्थिति और औद्योगिक विवादों को हल करने में मशीनरी की वर्तमान स्थिति। यहां हम इन तीनों में से प्रथम तत्व पर विचार कर चुके हैं। अब हम अन्य दोनों तत्वों पर शीघ्रता से अपने विचार रखेंगे और तदुपरान्त अपने प्रेक्षणों और समाधानों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करेंगे।

आर्थिक परिस्थिति के प्रासंगिक परिभाग

श्रम–अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से भारतीय अर्थ व्यवस्था को दो विरोधी मांगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, अर्थात– (१) औद्योगिक क्रिया के प्रसार द्वारा सेवायोजन की बृद्धि और (२) सेवायोजित व्यक्तियों के जीवन निर्वाह स्तर को उठाना। कभी–कभी यह कहा जाता है कि परवर्ती को पूर्व की प्रतीक्षा करनी चाहिये। वर्तमान में यह नीति प्रेरित मूल्य बृद्धि द्वारा किया जा रहा है जो एक ओर तो औद्योगिक प्रसार को प्रोत्साहन देती है और दूसरी ओर श्रमिकों की यथार्थ-मजदूरी को अधिक से अधिक स्थिर या अनेक मामलों में ह्रासमान रखती है। हमें यह भी प्रतीत होता है कि यही कारण है कि 'जीवन रक्षक', 'न्यूनतम' और 'जीवनयापन मजदूरी' जैसे सम्बोधों को मौद्रिक राशियों में अंकात्मक रूप प्रदान करने का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया है जिसका विवेचन करने से विभिन्न परिनिर्णयों और निर्णयों में अति करदी गई है। यही इस बात का भी कारण है कि बार-बार रखा गया **INTUC** के स्वर्गीय श्री जी० डी० अम्बेकर का सुझाव कि न्यूनतम मजदूरी का एक निर्देशांक रखा जाना चाहिये–अभी तक भारत सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया है और बम्बई के छापाखाना–उद्योग में किए गए एक छोटे से अपवाद को अन्य स्थानों में दोहराया नहीं गया है। मूल्ययंत्र ने राष्ट्रीय आय के वितरण का इस प्रकार का प्रतिफल प्रस्तुत किया है कि सम्पन्न अधिक सम्पन्न हो गये और निर्धन अधिक साधनहीन और इस प्रक्रिया में मध्यवर्गीय तो लगभग समाप्त ही हो गये हैं।

वर्तमान अर्थव्यवस्था के संचालन में प्रमुखतः दो बड़ी कमियां हैं। प्रथमतः यह परिकल्पना कर ली गई है कि उद्योग के विकास के लिये जिस पूंजी निर्माण की आवश्यकता है वह समाज के उच्च वर्ग से ही आवेगा। यही कारण है कि श्रमिक-लाभों का श्रमिकों के हेतु शेयरों में परिगणन केवल एक संबोध-मात्र ही रह गया हैं जिसका समय समय पर राष्ट्रीय उत्पादकता परिषदों में विवेचन कर लिया जाता है। अर्थव्यवस्था पर पूंजीवादी विचारों की पकड़ आज भी बहुत अधिक स्पष्ट है और समाजवाद के पश्चिमात्य संबोध जिस अल्प कल्याण की घोषणा करते हैं वह भी व्यवहार में नहीं लाया जा सका है। द्वितीय अभाव संसाधनों की व्यवस्था से सम्बन्धित है। इस सन्दर्भ में उत्पादकता की वृद्धि की रीतियों को मार्गदर्शक-रेखायें माना जाना चाहिये। इस क्षेत्र में यद्यपि व्यवस्थापकों के उदार वर्गों में इस विषय में आज भी विवेचन होता है परन्तु आर्थिक व्यवस्था का पूर्ण विचार करने पर यह कहना पड़ेगा कि ये सारे प्रशंसाप्रद प्रयास केवल मौखिक वाचालता हैं, जिसे श्रद्धास्पद दीख पड़ने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय आर्थिक रंगमंच पर वास्तविक नायक उद्योगपति, प्राविधिक अथवा प्रशासक नहीं हैं वरन् वित्त–प्रभु हैं। और इन वित्त–प्रभुओं का स्वार्थ उद्योग में नहीं वरन व्यवसाय में धन पर, शासन करने में नहीं वरन् लाभ का छल–साधन करने और उत्पादकता में नहीं वरन् लाभप्रदता में निहित है। जो मार्ग उन्होंने अपनाया है वह मिलावटी माल का उत्पादन करने, विशाल थोक और फुटकर बचतों के द्वारा बाजारों पर विजय करने, बेइमानी के तरीकों से एकाधिकारिक शक्ति प्राप्त करने, विभिन्न ब्रांडों के लिये सभी लाइसेन्स प्राप्त करने, संदिग्ध तरीकों से निर्माण करने और आसान मुद्रा की लालसा की है। इस तर्क के अनुसार निजी क्षेत्र की अनेक प्रशासकीय और उच्च नौकरियों को छलसाधन के आचार्यों, काले बाजार के विश्वस्त व्यक्तियों, तथा पारिवारिक और रिस्ते से सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा भरा जाता है। वे सरकारी क्षेत्र के अपनी राजनीतिक प्रतिमूर्तियों से समान क्लबों में मिलते हैं। ऐसी मण्डलियों की स्थिति अब ऐसी हो

गई है और इतनी फैल रही हैं कि आज श्रम न्यायपालिका तक इनके प्रभाव से मुक्त नहीं समझी जाती है। औद्योगिक व्यवस्था के सभी अंगों में गुण-नियन्त्रण का पूर्णतया अभाव है और ईमानदारी व्यवसाय में एक एक निषिद्ध वस्तु बनती जा रही है। कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी परिस्थिति में व्यवस्था में यथार्थ में कुशल व्यक्तियों को उन मध्यमवर्गीय कर्मचारियों के मार्ग पर रेंगना पड़े जो न तो नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित ही कर सकते हैं और न ही अन्धे क्रोध में क्रान्ति का विगुल बजाने के लिए सड़कों के संघर्ष को ही अपना सकते हैं। इस प्रकार कुशलता उस अजायब घर की वस्तु के रूप में बदल रही है जो विदेशी पूंजी के अभ्यागतों के लिये बनी है। भारतीय श्रमिक को वे निदान नहीं दिये जा रहे हैं जो कि उत्पादकता की रीतियों से प्राप्त हो सकते हैं।

यदि आर्थिक ढांचे और व्यवस्था के उपरोक्त दो अभावों को दूर किया जा सके तो आर्थिक व्यवहार की प्रत्यक्ष दुविधा को समाप्त किया जा सकता है। तब हम लाभ के बटवारे के प्रश्न पर पहुंच सकते हैं। मंहगाई भत्तो के विचारों, मजदूरी की यथार्थ वस्तु के ह्रास, पूंजी निर्माण की आवश्यकता (जो श्रमिक की वैयक्तिक आय में प्रवेश करती है) इत्यादि को प्रभावित करने वाला मूल्य–मजदूरी–मूल्य का चक्र उनके समस्त सन्दर्भ को बदल देगा। जनता का संचालन पूर्ण सेवायोजन और जीवन निर्वाह के स्तर को उठाने वाले दोनों ही उद्देश्यों की आवश्यकताओं को जीवित रखेगा। एक वास्तविक और अच्छी श्रम-नीति को तभी बनाया जा सकता है जब तक कि शक्तिशाली कानून और सभी स्तरों पर शासन द्वारा काले धन पर निगाह रखने के कारण उत्पन्न कमियों को निर्दयतापूर्वक न दूर कर दिया जाये। अन्यथा भारतीय श्रम समस्याओं के लिये कोई यथार्थ हल नहीं है। तब यही दोहराना आवश्यक होगा जिसे श्री एन० एम० जोशी सदैव कहते रहे–"यदि विकास की गति धीमी है तो क्रान्ति के आकर्षण बृहत होंगे" वर्तमान आर्थिक परिस्थिति के यही निष्कर्ष हैं।

श्रम-कानून और सरकारी नीति का समाघात

इन घटनाओं और परिस्थितियों पर श्रम कानून और सरकारी नीति का क्या प्रभाव हुआ है ? यह सरकार के पक्ष में कहा जा सकता है कि उसने यूनियन बनाने के लिए श्रमिकों का पूर्वकालीन भय, मिटा कर अच्छा काम किया है। सरकार ने उन्हें कानून में स्थान दिया, उन्हें ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण में सहायता की और सेवायोजकों को कुछ गम्भीरता से यह सोचने को मजबूर किया कि वे इस कार्य में भागीदार हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त सरकार श्रमिकों के लिये सहायक नहीं हुई है और कहीं-कहीं पर तो विरोधी ही सिद्ध हुई है। **INTUC** की यूनियनों के बचाव करने की उसकी चिन्ता ने यूनियनों की मान्यता और श्रम संराधन की प्रक्रिया सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर अनेक असंगतियाँ उत्पन्न की हैं। उसके कष्टकारी कानून ने श्रमिक के लिए न्याय को बहुत ही महंगा बना दिया है। अनेक परिनिर्णयों, समझौतों, वेजबोर्ड के निर्णयों इत्यादि का क्रियान्वयन बहुत कमजोर है। अनेक सार्वजनिक उद्योगों ने ट्रेड यूनियनों के प्रति उदासीनता की नीति को अपना कर देश के समक्ष एक बहुत ही खराब उदाहरण रखा है। प्रायः औद्योगिक शान्ति के प्रति इसकी चिन्ता ने मजदूर नेताओं का राजनीतिक लाभ उठाने के लिये अल्पकालीन उपलब्धि के रूप में अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य--अवरोधों को प्रोत्साहित किया है। उन्होंने प्रायः यूनियनों के शक्तिमान विकास और औद्योगिक सम्बन्धों के केन्द्रीय पहलुओं पर जनमत के प्रभाव के निर्माण में रुकावटें डाली हैं। प्रायः इन अल्पकालीन विचारों के आधार पर अस्थायी परिहार्य के रूप में मूल्य वृद्धि की आज्ञायें दी गई हैं जिसने उद्योग और श्रम दोनों में ही हानिप्रद कठिन संग्रहणात्मक बीमारियों का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रायः ये नीतियाँ शुद्ध राजनीतिक आधार पर कुछ मंत्रियों या अफसरों के लिए ख्याति और सम्पन्नता अर्जित करने के हेतु बनायी जाती हैं और इसके लिए पूंजीपतियों और श्रमिकों दोनों के बीच की वर्ग अनुशासन विहीनता

की उपेक्षा कर दी जाती है। सरकार यह निश्चय नहीं कर सकी है कि औद्योगिक विवाद और यूनियनों की पारस्परिक शत्रुता की किस स्थिति में और किस समय किस प्रकार से हस्तक्षेप करेगी। प्रतिफल में राजनीति ने इन मामलों में अनर्थ की उत्पत्ति किया है और कानून और श्रम सम्बंध नीति में इस उद्देश्य का अभाव है।

परिस्थिति की अल्पकालीन इष्टानुकूलताएें सभी दीर्घकालीन विचारों को आच्छादित कर लेती हैं।

भारतीय श्रम परिस्थितियों की पार्श्व भूमिका और आधार भूत दुर्बलताओं का यह लघु विवरण है। केन्द्रीय श्रम संगठनों के निर्माण और सरकारी नीति के प्रतिपादन का एक प्रमुख कारण राजनीति रही है। इसने श्रमिकों के लिए बहुत सी विनाशकारी स्थितियाँ उत्पन्न कीं। इसके साथ ही देश की अर्थ व्यवस्था के परिचालन में पूंजीवादी विचारों का प्रभुत्व वर्तमान राजनीति में उनका प्रभाव रहा है। इस परिस्थिति में उत्पादकता जैसे महत्वपूर्ण विषयों से केवल मौखिक सहानुभूति की जाती है और श्रमिक का उपयोग राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। ट्रेड यूनियनों को देश की आर्थिक व सामाजिक संस्थाओं के रूप में अपना स्थान ग्रहण करना अभी बाकी है। भारतीय मजदूर संघ जोकि एक शुद्ध अराजनीतिक केन्द्रीय श्रम संगठन है इस दृष्य को शुद्ध करने के लिए सिद्ध है और वे मार्ग जिसके द्वारा वह समझता है कि ये परिवर्तन लाए जा सकते हैं, उनका विवरण अन्य अध्यायों में राष्ट्रीय श्रम आयोग की प्रश्नावली के अनुरूप ही प्रस्तुत किये गए हैं।

प्रकाशक–

महामंत्री

भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश

२, नवीन मार्केट

कानपुर

मूल्य १५ पैसे

मुद्रक–

टिप-टाप प्रिन्टर्स

२४/९१, बिरहाना रोड,

कानपुर–१

फोन : ६९१११